गुफ़ाओ से सितारों तक

अबरार मोहसिन

H
028.5
Ab 84 G

H
028.5
Ab84G

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SHIMLA

गुफ़ाओं से सितारों तक

अबरार मोहसिन

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

CATALOGUED

Library IIAS, Shimla
H 028.5 Ab 84 G
00078444

H
028.5
Ab 84 G

मूल्य : रु. 10.00

© अबरार मोहसिन

संस्करण : 1990

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110 002

शाखा : साइंस कॉलिज के सामने, पटना-800 006.

मुद्रक : मेहरा ऑफसेट प्रेस,
दरियागंज, नई दिल्ली-110 002

कलापक्ष : सी-40 स्टूडियो, नई दिल्ली

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 78444
Date 22.3.92
SHIMLA.

गुफाओं में

लाखों वर्ष पहले, कठिनाइयों से भरी दुनिया थी यह। खासकर आदमी के लिए।

पशुओं की हालत तब आदमी से अच्छी थी। उनके लिए जीवन की रक्षा करना आदमी से ज्यादा आसान था। पशुओं में किसी के पास बल था, किसी के पास पैने सींग थे और किसी के पास नुकीले दाँत। किसी के पास पंजे थे, तो कोई तेज रफ्तार से अपनी रक्षा कर लेता था। पर आदमी के पास न तो इतना बल था, न सींग, न नुकीले दाँत, न पैने पंजे और न ही वह उतनी तेजी से दौड़ सकता था। बड़े-बड़े खूँखार जानवरों से वह हर समय डरा-डरा रहता। हर समय उसे अपनी जान की चिंता लगी रहती। ऐसी हालत में उसकी जिंदगी में कहीं भी तो सुख-चैन नहीं था।

जाड़ों में वह काँपता फिरता और गर्मियों में धूप और लू से जान बचाता भागता। आँधी और वर्षा में घबरा जाता। अब भला यह भी कोई जीवन था! उससे अच्छे तो पशु-पक्षी ही थे जो अपने ठिकाने तो बना लेते हैं। इतनी बड़ी धरती पर सिर्फ आदमी का ही ठिकाना नहीं

था । उसने वृक्षों पर डेरा डाला, पर वृक्ष उसका ठिकाना तो नहीं बन सकते थे, उसे सर्दी-गर्मी और आँधी-पानी से तो नहीं बचा सकते थे।

फिर एक यही समस्या नहीं थी। दूसरी समस्या पेट भरने की थी। पक्षी इधर-उधर दाना-दुनका ढूँढ लेते। जानवर भी एक-दूसरे को मारकर या घास-पात खाकर अपना पेट भर लेते। पर आदमी के लिए यह काम उतना आसान नहीं था। जंगली फलों से अवश्य कुछ काम चल जाता था, लेकिन जब फल न होते तब बहुत कठिनाई होती थी।

ऐसी हालत में आदमी के सामने बस यही एक रास्ता था कि वह भी जानवरों की भाँति शिकार करके पेट भरे। पर शिकार के लिए ताकत और तेज रफ्तार की आवश्यकता होती है, और आदमी के पास न उतना बल था, न तेज रफ्तार। भागकर क्या वह हरिण और खरगोश को पकड़ सकता था ? जानवर छलाँगें मारकर या तो झाड़ियों में गुम हो जाते या वृक्षों पर चढ़ जाते और आदमी अपना-सा मुँह लिए देखता रह जाता। पक्षियों का शिकार तो उसके लिए और भी कठिन था। भला धरती पर चलनेवाला आदमी आकाश में उड़नेवाले पक्षियों को पकड़ता भी तो कैसे ! इसलिए या तो उसे भूखा रहना पड़ता या फिर वह किसी दूसरे आदमी को ही मारकर पेट की आग बुझाता !

आदमी तब नंगा रहता था। कपड़ों का तो उस समय सवाल ही नहीं था और उसमें इतनी समझ ही कहाँ थी जो उसे शरीर ढँकने का खयाल आता ! हाँ, जाड़ों में शायद

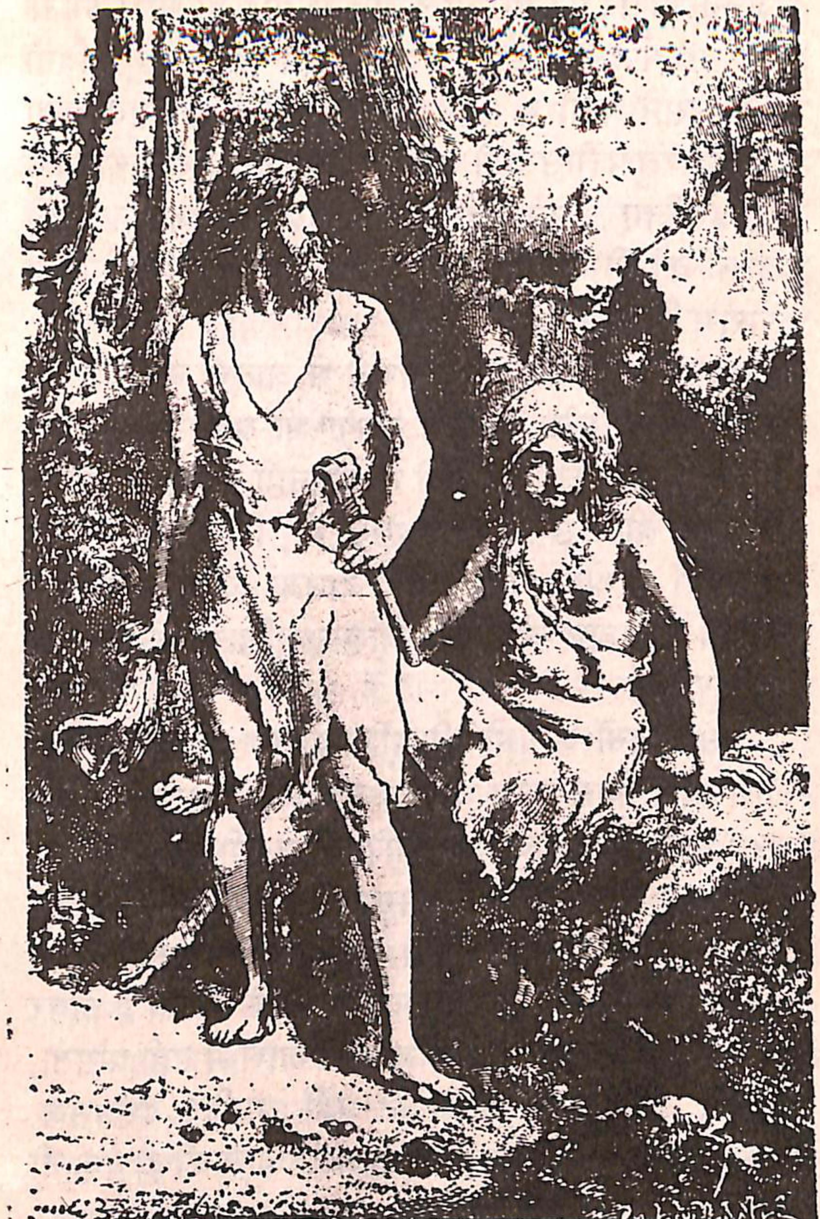

हसरत-भरी निगाहों से वह जानवरों को देखता हो, जिनके शरीर पर घने बाल होते थे और जो भारी ठंड के बावजूद मजे से इधर-उधर घूमते फिरते थे। कुछ दिनों तक उसने पत्तों से शरीर ढँककर जाड़े का मुकाबला किया परंतु पत्ते उसकी अधिक हिफाजत नहीं कर सकते थे, इसलिए उसने यही ठीक समझा कि जानवरों की खालों को ही ओढ़ना चाहिए। इन खालों से उसे बड़ा आराम मिला।

आराम के अलावा जानवरों से आदमी को और भी काफी-कुछ मिला। उनसे सीखा भी बहुत-कुछ। पर उन दिनों उनकी तरह मजे में वह नहीं रह सका। फिर भी एक चीज उसके पास ऐसी थी, जिसने उसे दूसरे जानवरों से श्रेष्ठ बना दिया, जानवर-जैसा नहीं रहने दिया। और वह चीज थी—बुद्धि। बुद्धि या समझ-बूझ का गुण।

उन दिनों आदमी की बुद्धि बालक की बुद्धि-जैसी थी। और जिस तरह बालक की बुद्धि बढ़ती है, उसी तरह धीरे-धीरे आदमी की बुद्धि भी बढ़ती गई। बुद्धि के ही कारण लाखों वर्षों से उसका सोच-विचार जारी है। इससे उसकी समझ बढ़ी है। अनुभव ने भी उसकी बुद्धि को बढ़ाया। जानवर अनुभव से नहीं सीखते। अगर सीख सकते, तो कभी कोई जानवर जाल में नहीं फँसता, मछली कभी काँटे के निकट नहीं आती। दरअसल, आदमी की कहानी उसकी बुद्धि के विकास की ही कहानी है।

कोई घर, कोई ठिकाना आदमी का नहीं था। जहाँ

नींद आई, सो गया। आँख खुली तो आगे बढ़ गया। न जाने कितने हजार वर्ष वह इसी तरह भटकता रहा—एक ऐसे काफ़िले की तरह जिसकी कोई मंजिल नहीं होती। धीरे-धीरे उसने सोचा कि पंछी घोंसले बनाते हैं और जानवर भटों और माँदों में निवास करते हैं, तो क्यों न वह भी इसी तरह रहे, उन्हें ही अपना ठिकाना बनाए! इधर-उधर पेड़ों के नीचे पड़े रहने में जंगली जानवरों का भी डर था। यह सोचकर आदमी ने जानवरों की माँदों पर कब्जा कर लिया, जानवरों को वहाँ से मार भगाया और उनमें जा घुसा! कोई गुफा दिखाई दी तो उस पर भी काबिज हो गया।

यही भट, माँद और गुफाएँ हमारे सबसे-पुराने घर थे।

अब आदमी दिन-भर इधर-उधर घूमता और रात को मजे से गुफाओं में पैर पसारकर सो जाता। न जानवरों का डर, न आँधी-पानी का खटका। आदमी के जीवन का यह एक महान काम था। वह महानता के उस रास्ते पर चल पड़ा था, जो हम तक आ पहुँचा है। उस समय के अदामी के लिए पत्थरों की वह भयानक और अँधेरी गुफाएँ हमारे आज के खूबसूरत और विशाल भवनों से भी अधिक महत्व रखती थीं।

यह आज से करीब एक लाख वर्ष पहले का जमाना था और उसे पत्थर का जमाना या पाषाण-युग कहते हैं। कहते इसलिए हैं कि आदमी के जीवन में तब पत्थर का बड़ा महत्त्व था। वह सारी वस्तुएँ पत्थर से ही बनाता था। इस युग को दो भागों में बाँटा गया है—पुराना

पाषाण-युग और नया पाषाण-युग।

पाषाण-युग में सबसे अधिक भय आदमी को जंगली जानवरों से था। हर रोज न जाने कितने मनुष्यों को जानवरों का भोजन बनना पड़ता। उनसे अपनी रक्षा करने और उनका शिकार करके के लिए आदमी ने पत्थर को ही हथियार बनाया। जानवर को देखते ही उस पर पत्थर दे मारता। परंतु पत्थर को दूर तक नहीं फेंका जा सकता था। धीरे-धीरे आदमी ने लकड़ी के सिरे पर नुकीले पत्थर बाँधकर भाले और हथौड़े बनाना सीख लिया। जानवरों की खालों को दाँतों और उँगलियों से फाड़ना और पहनने लायक बनाना मुश्किल काम था, पर नुकीले पत्थरों ने आदमी की यह मुश्किल भी आसान कर दी। पत्थरों से ही वह जमीन खोदने का काम लेने लगा। और भी कितने ही काम वह पत्थरों से करने लगा। पत्थर उसकी जिंदगी का एक खास हिस्सा बन गया। इसीलिए इसे 'पत्थर का जमाना' या 'पाषाण-युग' कहा जाता है और यह बहुत उचित नाम है। तब तक तो आदमी को लोहे का नाम भी मालूम नहीं था।

गुफाओं में ठिकाना मिलने के बाद आदमी ने सुख की साँस ली थी। सुख-शांति में ही आदमी सोच-विचार कर सकता है। इसलिए गुफाओं में रहते हुए उसे भी ध्यान आया कि अकेले रहना ठीक नहीं और एक से दो भले होते हैं। यह विचार आते ही आदमी ने परिवार बना लिए। जरूरी काम भी आपस में बाँट लिए। पुरुष शिकार करते, रखवाली करते और स्त्रियाँ घरेलू काम निपटातीं।

आग की खोज

आज से बीस-बाईस हजार वर्ष पहले की बात है, जब आदमी के जीवन में एक महान घटना घटी। और यह महान घटना थी—आग की खोज।

पर कैसे लगा आदमी को आग का पता ? इस बारे में बहुत-सी कहानियाँ सुनी जाती हैं। कुछ लोगों का विचार है कि आग को ज्वालामुखी से प्राप्त किया गया। जो हो, पहले-पहल आग की लपटों की लाल-लाल जबानें देखकर आदमी कितना घबराया होगा! तब क्या वह जानता होगा कि यही आग उसके जीवन को कितना सुखी बना देगी! हो सकता है किसी ने दहकता हुआ अंगारा हाथ में उठा लिया हो और हाथ जलने पर उसने सोचा हो कि यह बड़ी खतरनाक वस्तु है, इसलिए इससे दूर ही रहना ठीक है! हो सकता है, बहुत दिनों तक वह आग को देखकर भागता ही रहा हो! यह भी संभव है कि किसी अँधेरी रात में यह लाल-लाल वस्तु आदमी ने देखी हो और हैरान होकर वह पास से उसे देखने लगा हो। ऐसा करने पर उसे शायद अनुभव हुआ हो कि आग के पास जाने से सर्दी कम लगती है और अँधेरा भी कम हो जाता है।

अवश्य ही कुछ-न-कुछ हुआ होगा। पर यदि आग ज्वालामुखी से नहीं मिली होगी, तो कहाँ से आई होगी ? अब तो सभी यह जानते हैं कि दो वस्तुओं के आपस में रगड़ खाने से गर्मी पैदा होती है। रगड़ अधिक हो तो यही गर्मी चिनगारियों में बदल जाती है। जंगल के वृक्षों के

बारे में भी सभी जानते हैं कि वे इतने घने और पास-पास होते हैं कि हवा के झोंकों से उनकी शाखाएँ आपस में रगड़ खाती हैं और इससे उनमें चिनगारियाँ पैदा हो जाती हैं। यही चिनगारियाँ कई बार नीचे सूखे पत्तों पर गिरकर आग में बदल जाती हैं। ऐसी चिनगारियों को अँधेरी रातों में हम भूल से भूत भी समझ लेते हैं।

हो सकता है उन दिनों आदमी ने ऐसी ही आग देखी हो। दिन निकलने पर उसे जलते-सुलगते पेड़-पौधे दिखाई दिए होंगे। वह आश्चर्य से आँखें फाड़े सारा दृश्य देखता रहा होगा और उसी समय कोई जला हुआ पक्षी या जानवर उसने देखा होगा! और जब उसे उठाकर उसने चखा होगा तो बहुत स्वाद आया होगा, जैसा अब तक उसने नहीं जाना था—क्योंकि अभी तक तो वह कच्चा मांस ही खाता रहा था। उसने सोचा होगा कि पक्षी को उसी चीज ने मजेदार बनाया है, जिसने पेड़-पौधों को जलाया है! तब उसने यह तय किया होगा कि इस चीज को वह अपनी गुफा में ले जाएगा और मांस को भूनकर ही खाया करेगा। यह पता उसे था कि यह हाथ जला देती है, इसलिए वह जलती लकड़ियाँ ही गुफा में ले आया होगा। अब, अँधेरे घर में वह पहला उजाला था और सबसे पहला दीप भी वही था।

इतना हुआ तो आदमी की खुशी का ठिकाना न रहा। आग ने उसकी गुफाओं के अँधेरे को दूर कर दिया। उसी ने उसके खाने को स्वादिष्ट बना दिया और उसी से उसकी सर्दी भी कम हो गई! परंतु उसकी यह खुशी ज्यादा देर नहीं टिकी, क्योंकि शीघ्र ही आग बुझ

भी गई। गुफा में फिर अँधेरा लौट आया। सर्दी फिर बढ़ गई।

बहुत दिन बाद उसे फिर आग दिखाई दी। वह उसे फिर गुफा में ले आया। इस बार उसे यह ज्ञान भी हुआ कि आग को बराबर जलाए रखने के लिए उसमें सूखी लकड़ियाँ और सूखे पत्ते डालने चाहिए। और अब आदमी ने उसे बुझने नहीं दिया, क्योंकि उसे अनुभव हो गया था कि एक बार खोने के बाद दोबारा आग को पाना कितना कठिन काम है।

अब एक दिन एक और अनोखी घटना घटी। कुछ बालक खेल-कूद रहे थे कि एक को पत्थर के दो टुकड़े मिल गए। उसने उन्हें टकराया। टकराते ही उनमें से चिनगारियाँ निकलीं और वह अचरज में पड़ गया। उसने उन्हें फिर टकराया। फिर चिनगारियाँ निकलीं। वाह-वाह! ... बड़ा मजेदार खेल था। अब बालक हर वक्त यही खेल खेलने लगे। रात में यह खेल और भी सुंदर लगता। एक दिन कुछ चिनगारियाँ सूखे पत्तों पर गिर पड़ीं और पत्तों में आग लग गई। बालक डरकर भागे और अपने बड़ों को बुला लाए। उन्होंने जब सारी बात जानी तो बेहद खुश हुए। आदमी ने आग जलाना, उसे पैदा करना सीख लिया—जीवन में यह उसकी बहुत बड़ी विजय थी। अब अगर आग बुझ जाएगी, तो उसे चिंता नहीं। वह उसे फिर पैदा कर लेगा। आग ने आदमी के जीवन को बदल दिया। अब वह जानवरों से ऊँचा हो गया। जानवर मांस को कच्चा ही खाते, पर वह उसे भूनकर खाना सीख गया।

आग का एक लाभ आदमी को यह भी हुआ कि गुफाएँ सुरक्षित हो गईं। पहले गुफाओं में जंगली जानवर घुस आते थे, परंतु आग देखकर अब वह भाग जाते। इससे आदमी को सुख की नींद नसीब हो गई। पहले उसे रात-भर यही डर रहता था कि कब कोई जानवर चुपके से आकर उस पर हमला कर दे या उसे मार डाले और खा जाए। परंतु अब वह दिन-भर के शिकार से थककर रात-भर सोता। स्त्रियाँ भी दिन-भर तो घर के काम करतीं—जैसे खालों को दाँतों से चबाकर नरम बनाना, मुर्दा जानवरों को आग पर भूनना और गुफाओं को साफ-सुथरा रखना—और रात को खुलकर सोतीं।

अब जब आदमी चैन से घर में आकर बैठता तो हथियारों को बेहतर बनाने के बारे में सोचता। शिकार करने के भी नए-नए ढंग उसने निकाले। जिन जानवरों को मारना कठिन था, उन्हें भी गढ़े खोदकर वह नीचे गिराने लगा।

सुख-शांति के ऐसे ही दिनों में एक अनोखी बात उसे सूझी। गुफा की दीवारों पर वह जानवरों के चित्र बनाने लगा। वही आदमी की सबसे पहली चित्रकला थी। ऐसा करके वह जानवरों से बहुत आगे बढ़ गया, क्योंकि वह तो जानवरों के चित्र बना सकता था, पर जानवर आदमी का चित्र नहीं बना सकता था।

गुफाओं में बने एक ऐसे ही चित्र का पता पिछली सदी में तब चला जब एक स्पेन-निवासी प्राचीन गुफाओं की खोज कर रहा था। उसके साथ उसकी बेटी भी थी। एक गुफा में पहुँचकर अचानक वह चिल्लाई—बैल!

बैल !…पर बैल वहाँ कहीं था नहीं। पिता अचरज में पड़ गया। किंतु लड़की ने दीवार की ओर इशारा किया, तो बात उसकी समझ में आ गई। दीवार पर बैल के चित्र बने हुए थे। लगता था जैसे गुफावासी आदमी ने उन्हें नुकीले पत्थर से खोदकर बनाया था।

यहाँ तक आने में आदमी को लाखों वर्ष लगे थे। और अब नए पाषाण-युग की शुरुआत हो गई थी। इस बीच आदमी ने रहने के लिए गुफाओं और आग की खोज कर ली थी।

यह नया पाषाण-युग दस हजार वर्ष पहले शुरू हुआ। तब तक आदमी ने अपनी सुख-सुविधा के लिए कई तरह की चीजें जुटा ली थीं। कुल्हाड़ियों और हथौड़ों से उसे काफी आसानी हो गई थी, परंतु अब इनमें कुछ और सुधार की जरूरत महसूस हुई। ये हथियार दूर तक मार नहीं कर सकते थे। शिकार और अपनी हिफाजत के लिए आदमी को जानवरों के बहुत पास तक जाना पड़ता था और यह बहुत जोखिम का काम था। क्रोध से भरा जानवर उसे मार भी डालता था। इसलिए उसने सोचा कि कोई हथियार ऐसा क्यों न बनाया जाए, जिसे दूर से ही जानवर पर फेंका जाए और वह सीधी मार कर सके।

आखिर एक तरकीब उसे सूझ गई। लकड़ी की एक लचकदार छड़ को अपनी ओर झुकाकर उसने उसके दोनों सिरों को ताँत से बाँध दिया। फिर एक और पतली और सीधी छड़ उसने ताँत पर रखी और ताँत को छड़ के साथ अपनी ओर खींचकर जोर से छोड़ दिया—छड़ सीधे सनसनाती हुई बहुत दूर जा गिरी!

आदमी ने तीर-कमान बना लिया !

कुछ दिनों बाद इसमें उसने और सुधार किया। तीर के सिरे पर उसने नुकीला पत्थर जड़ दिया। इससे तीर की चोट ज्यादा गहरी हो गई। अब आदमी दूर किसी पेड़ पर चढ़कर तीर से शिकार करने लगा। इससे पक्षियों का शिकार करना भी आसान हो गया।

आज के आदमी को 'ऐटम बम' बनाकर इतना गर्व नहीं हुआ, जितना कि गुफाओं के आदमी को धनुष-बाण बनाकर हुआ होगा। इसके बल पर अब वह काफी शिकार कर लेता। पशु-पक्षियों को बड़ी आसानी से मार डालता और कई-कई दिन बैठकर खाता रहता। इस तरह सोच-विचार करने के लिए अब उसे और अधिक समय मिलने लगा।

एक दिन आदमी ने एक और अजीब दृश्य देखा। उसने देखा कि बड़े-बड़े सींगोंवाला एक जानवर अपने बच्चों को अपने थनों से कुछ पिला रहा है। वह आश्चर्य से देखता हुआ उनकी ओर बढ़ा। उसे देखकर जानवर और उसका बच्चा भाग गए। पर जिस जगह वह जानवर खड़ा था, वहीं एक पत्थर पर उसे सफेद रंग की कुछ बूँदें दिखाई दीं। वह बूँदें उसने भी चाटकर देखीं—अहा-हा !··· मजा आ गया ! तो यही वह चीज थी जिसे बच्चा पी रहा था !

अब उसे अपने उन बच्चों का भी खयाल आया जो अपनी माँ की छातियों को पीते रहते हैं !··· पर अब वह बच्चा नहीं हो सकता था। वह तो जवान था। पर उन बूँदों के स्वाद को भी नहीं भूल सकता था। इसलिए उसने

भाग-दौड़कर एक वैसा ही जानवर पकड़ लिया और उसके थनों से मुँह लगा दिया। थनों को पीने से जो तरल पदार्थ उसके मुँह में आया, वह दूध था।

दूध!—मीठा और तर! स्वादिष्ट और प्यारा! अब तो उसे दूध की ऐसी चाट लगी कि वह हर रोज किसी गाय-भैंस या बकरी को पकड़ लेता और दूध पीता। पर हर रोज जानवर को पकड़ना भी कठिन काम था। इसलिए उसने ऐसे एक-दो पशुओं को अपनी गुफा में ही बाँध रखा। ऐसे पशु खूँखार भी कम थे। शुरू में तो उन्हें पकड़ रखने में आदमी को कुछ कठिनाई हुई, पर धीरे-धीरे पशुओं ने आदमी का संग स्वीकार कर लिया। वे पालतू या घरेलू जानवर कहलाने लगे।

आदमी को इनसे बहुत-से लाभ हुए। स्वादिष्ट दूध से उसका पेट भी भरा और ताकत भी मिली। खाने के लिए मांस और पहनने के लिए खालें उनसे पहले ही उसे मिल रही थीं। भेड़ों से एक और लाभ उसे हुआ। कभी सख्त सर्दी में आदमी ने भेड़ के बालों में उँगलियाँ डालीं तो बड़ा अच्छा लगा। बालों में काफी गरमास थीं। सर्दी से बचने का एक और उपाय उसे मिल गया था, पर वह करता क्या? बालों को अपने शरीर पर वह कैसे लपेटता? वस्त्र बनाना अभी वह जानता नहीं था। फिर भी गरमाई का एक साधन उसने जरूर ढूँढ़ लिया था।

धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों आदमी का आराम बढ़ता गया, त्यों-त्यों उसका काम और जिम्मेदारी भी बढ़ती गई। पहले उसे केवल अपना पेट भरने की चिंता रहती थी, अब बाल-बच्चों के साथ पशुओं के भोजन की भी चिंता

हुई। अपने साथ पालतू पशुओं को भी जंगली जानवरो से बचाने की बात सोचने लगा। इसके लिए उसने लकड़ियों के बाड़े बनाए और ऐसी जगह बसना आरंभ किया, जहाँ पशुओं के लिए पानी और घास आसानी से मिल सकते।

इन्हीं दिनों आदमी ने अपनी गुफाओं की सफाई और सजावट की ओर ध्यान दिया। इन्हीं दिनों उसने उनकी दीवारों पर चित्र खोदे। पहले वह गुफा की ऊँची-नीची जमीन पर सोता था। नुकीले पत्थर और छोटी-छोटी कंकड़ियाँ उसकी कमर में चुभती थीं। बुद्धि में आया तो उसने कंकड़-पत्थरों को गुफा से बाहर फेंक दिया और फर्श को खोद-खोदकर समतल बना लिया। फिर उस पर सूखी घास और पत्तियाँ बिछा लीं, और अब जब वह उस पर सोया तो बड़ी मीठी नींद आई।

पानी के लिए आदमी को रोज कई बार झील, नदी या तालाब पर जाना पड़ता था। अँधेरी रातों और आँधी-तूफान में जब गुफा से बाहर निकलना कठिन होता, तो उसे प्यासा ही रहना पड़ता। सोच-विचारकर उसने गुफा में ही पानी रखने का प्रबंध किया। गुफा में उसने एक गढ़ा खोदा और जानवर की खाल में नदी या तालाब से पानी लाकर गढ़े में भर दिया। गढ़े का पानी अब कई-कई दिन काम आता। इससे वह हर रोज पानी के लिए दूर जाने से बच गया। पानी पीने के लिए पहले वह किसी फल का खोल यां पत्तों का दौना काम में लाता होगा और बाद में पत्थर के प्याले बनाए होंगे। वैसे एकदम शुरू के दिनों में तो आदमी जानवरों की तरह ही

झुककर पानी पीता था !

यह पाषाण-युग ही था, पर अब उसकी उम्र ज्यादा नहीं रह गई थी।

आज से करीब छह हजार साल पहले आदमी ने एक और चीज प्राप्त कर ली। और यह चीज थी—धातु। पत्थर-युग की समाप्ति के साथ-साथ धातु-युग की शुरुआत हुई। पर जो धातु उसे सबसे पहले मिली, वह थी ताँबा। पत्थरों के औजारों के साथ-साथ आदमी ने ताँबे के हथियार बनाने शुरू कर दिए। पत्थर के हथियारों से ये ज्यादा बढ़िया थे। इसी धातु से उसने कुछ बर्तन भी बनाए।

कुछ हजार वर्ष बाद उसे एक और धातु की जानकारी मिली। यह धातु थी—लोहा !

अब लौह-युग का आरंभ हुआ। इसने आदमी को एक नई शक्ति दे दी। हालाँकि उस जमाने में लोहे का एक टुकड़ा तैयार करना बहुत कठिन काम था।

पर इन धातुओं की खोज हुई किस तरह ? कोई नहीं जानता, क्योंकि ये सारी खोजें समय की धूल में दब गई हैं। हम केवल खयाली घोड़े ही दौड़ा सकते हैं।

संसार में बहुत-सी बातें आदमी को अचानक मालूम हुई हैं। जैसे 'न्यूटन' ने बाग में सेब को पेड़ से टूटकर नीचे गिरते देखा और तब उसे पता चला कि पृथ्वी मे खींचने की शक्ति (गुरुत्वाकर्षण-शक्ति) होती है !… जैसे 'जेम्स वाट' ने चाय की केतली का ढक्कन बार-बार ऊपर उठते देखकर यह जाना कि भाप एक शक्तिशाली चीज है !

धातु का पता भी आदमी को इसी प्रकार लगा । कहा जाता है कि अफ्रीका के उत्तरी भाग में किसी स्थान पर एक काफ़िले को रात बिताने के लिए ठहरना पड़ा । ठहरने के बाद उसने खाना बनाने के लिए आग जलाई । दूसरे दिन सुबह उसने देखा कि जिन पत्थरों के बीच आग जलाई गई थी, उन पर कोई चीज चिपकी है जो जमकर सख्त हो गई है । वह अनोखी चीज पत्थर से भी अच्छी थी । उसे गर्म करने पर मोड़ा भी जा सकता था । आस-पास की चट्टानों से उसने कच्ची धातु के उन टुकड़ों को इकट्ठा किया और आग में पिघला कर उसे पकाया । धीरे-धीरे इस काम को वह और अच्छी तरह करने लगा ।

पहले उसने पत्थर की कुल्हाड़ियाँ बनाई थीं । फिर ताँबे की । अब उसने लोहे की कुल्हाड़ियाँ बनाईं । ये बहुत मजबूत थीं । बड़े-बड़े वृक्षों को काट डालतीं । पत्थर और ताँबे की कुल्हाड़ियों में यह गुण कहाँ था ? उसने आरियाँ भी बनाईं, जिनसे वृक्षों को चीरकर तख्ते बनाए गए । तीरों की नोक भी अब लोहे की होने लगी । भालों का फल भी लोहे का हो गया । इससे बड़े-बड़े जानवरों का शिकार आसान हो गया । अब आदमी का वार ज्यादा कारगर और अचूक होने लगा ।

आज आदमी के पास धातुओं का भंडार है । लोहा, ताँबा, पीतल, सोना चाँदी—सब धातु ही तो हैं । हमारी मशीनें, गाड़ियाँ, कल-पुर्जे, आज सभी तो धातुओं से बनते हैं । सचमुच, धातुओं ने हमारा बड़ा भला किया है पर सबसे अधिक भला तो उस आदमी ने किया है जिसने

प्रगति के रास्ते पर चलते हुए पहले-पहल धातु की खोज की और जीवन में उसके उपयोग की शुरुआत की।

आदमी ने अपने जीवन को सदा वातावरण के अनुसार ढाला है। जो जीव खुद को वातावरण के हिसाब से नहीं ढाल पाए, वे समाप्त हो गए। संसार का यही नियम है। आदमी इसमें सफल हुआ और अपनी जाति को उन्नति के इस युग तक ले आया। संसार का राजा बन बैठा।

उस समय के बच्चों का जीवन आज के बच्चों-जैसा नहीं था। आज तो हमारे बच्चे पाठशालाओं में विद्या प्राप्त करने जाते हैं। जो ज्ञान और अनुभव दूसरों के पास हैं, उसे सीखना और जानना ही विद्या प्राप्त करना है। पर उस समय तो आदमी खुद सीख रहा था, इसलिए बालकों को भला क्या सिखाता ! तब न किसी को बोलना आता था, न कोई भाषा थी, न सीखने के लिए किताबें ! बस, आदमी जानवरों-जैसी आवाजें निकालता था। बालक स्वयं अपनी आँखों से देखकर सीखता था। पिता को शिकार करते देखकर वह भी शिकारी बन जाता। वह खुद अपना शिक्षक था और उसका सारा जीवन पाठशाला के समान था। कदम-कदम पर वह अपने जीवन से नया पाठ पढ़ता था, नई बात सीखता था।

उस समय के बालक आलसी और कामचोर नहीं हो सकते थे। बड़ों के साथ वे शिकार पर जाते, खाने के लिए फल और जलाने के लिए लकड़ियाँ एकत्र करते, पालतू जानवरों की देखभाल करते। और अगर वे काम से जी चुराते तो जीवन जीने की कठिनाइयाँ उन्हें मार

डालतीं।

खेती-बाड़ी की शुरुआत

अभी तक आदमी मांस, दूध और जंगली फलों से पेट भरता था। खेती-बाड़ी का नाम तक उसे मालूम न था। पर पेट भरने के किसी और साधन की तलाश उसे थी। वह देखता था कि धरती से छोटी-छोटी पत्तियाँ निकलकर पौधे बन जाती हैं और यही फिर बड़े-बड़े वृक्ष बन जाती हैं। फिर इन वृक्षों और पौधों पर फूल आते हैं, फल आते हैं। परंतु यह सब होता क्यों है, इस पर उसने कभी नहीं सोचा था।

कुछ पौधे ऐसे भी थे, जिन पर फलों की बजाय बालियाँ आती थीं और उनमें दाने होते थे, जिनका स्वाद न मीठा था न खट्टा। पर यही दाने आगे चलकर आदमी के जीवन का आधार बननेवाले थे। वे यही दाने थे, जिन्हें आज हम गेहूँ, चना, ज्वार, बाजरा, धान और मक्का इत्यादि के नाम से जानते हैं।

एक दिन क्या हुआ? आदमी के हाथ गेहूँ के कुछ दाने लग गए। वह उन्हें बिना कुछ सोचे-समझे दो पत्थरों से पीसने लगा! बालकों ने पिसे हुए दानों में पानी मिलाकर गोलियाँ-सी बना लीं और लगे खेलने! तभी एक गोली पास जलती हुई आग में जा पड़ी। आदमी ने वह गोली आग में से निकाली और अचानक मुँह में डाल ली! ...और न जाने क्या जादू था उस गोली में कि उसने और गोलियाँ आग में डालकर निकालीं और खा गया! फिर भी जी न माना तो और खाईं। और इस तरह पेट

INSTITUT OF ADVANCED
78414

भरने की एक नई चीज उसे मिल गई ! अब वह रोज वैसी ही बालियाँ तोड़ लाता। उनके दाने निकालता, उन्हें पीसता, उनके टुकड़े बनाता और उन्हें आग में भूनकर खा जाता।

वे टुकड़े ही हमारी सबसे पहली रोटियाँ थीं !

लेकिन कुछ समय बाद जब दानोंवाले पौधे खत्म हो गए तो आदमी को बड़ी चिंता हुई। अब उन्हें कैसे पाया जाए !

एक दिन एक स्त्री-एक पुरुष को एक स्थान पर ले गई और इशारे से उसे कुछ दिखाने लगी। कुछ दिनों पहले उस स्त्री ने उस जगह कुछ दाने फेंक दिए थे, और अब उनसे छोटे-छोटे पौधे निकल रहे थे ! वह उन्हें रोज बढ़ता हुआ देखते। कुछ दिनों बाद वे नन्हें पौधे बिलकुल वैसे हो गए, जिनसे वह दाने प्राप्त करता था। फिर उन पौधों से बालियाँ भी निकल आईं !

यह देखकर उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। अब उसने समझा कि दानों को धरती में डालने से पौधे उग आते हैं ! उसने तुरंत कुछ दाने गुफा के भीतर और बाहर बिखेर दिए। दिन बीते और पौधे निकलने लगे। परंतु यह क्या बात हुई ! न तो गुफा के भीतर कोई पौधा उगा और न पथरीली या सूखी जमीन पर। जो भी दाने उगे वे खुली और नम जमीन पर ही उगे। जब कई बार ऐसा ही हुआ तो आदमी ने समझ लिया कि दाने उन

स्थानों पर नहीं उगते, जहाँ सूरज की रोशनी न पहुँच सके, या जहाँ धरती सख्त और सूखी हो। इसलिए अब आदमी ऐसे स्थानों की खोज करने लगा, जहाँ की मिट्टी पथरीली न हो, वह खुले आक़ाश के नीचे हो और पास में पानी भी हो!

गुफाओं से बाहर

मजबूर होकर आदमी अब गुफाओं से बाहर निकल आया। बहुत खोज-बीन के बाद वह नदियों के किनारे तक आ पहुँचा। यहाँ पानी था, धरती मुलायम थी और प्रकाश भी था। इसलिए उसने नदियों के किनारे ही रहने का फैसला किया। गुफाओं की नकल करते हुए उसने वहीं घास-फूस और लकड़ियों के छोटे-छोटे झोंपड़े बना लिए और खेती शुरू कर दी !

सबसे पहले लोग मिस्र में नील नदी के तट पर बसे। नील में हर साल बाढ़ आने से बहुत-सा पानी और एक प्रकार की काली मिट्टी आस-पास जमा हो जाती थी, जो खेती के लिए बहुत उपजाऊ होती थी।

धीरे-धीरे आदमी ने यह भी जाना कि मिट्टी खोदने से नरम बन जाती है और पौधे शीघ्र उग आते हैं। इसलिए अब उसने हाथों से मिट्टी खोदनी शुरू की। पर यह बहुत कठिन काम था। उसके नाखून और उँगलियाँ इतने मजबूत थोड़े ही थे कि वह उनसे जमीन खोदता ! वह फिर सोचने लगा। तब उसे एक नई बात सूझी। वह एक लकड़ी लाया, जो एक सिरे पर मुड़ी हुई थी। अब एक

सिंचाई के लिए पानी की भी जरूरत थी। इसके लिए आदमी को जानवर की खाल लेकर नदी में उतरना पड़ता था। उसे पीठ पर लादकर उसमें भरे पानी को खेतों में डालना होता था। कुछ दिन बाद आदमी ने एक और तरकीब सोची। नदी के किनारे पर उसने एक मोटी-सी लकड़ी गाड़ी और उसके ऊपरी सिरे पर एक और लकड़ी बाँध दी। लकड़ी के एक सिरे पर जो नदी की ओर था, खाल का एक डोल-सा बनाकर जंगली बेल से बाँध दिया और उसी के पिछले सिरे पर एक बड़ा-सा पत्थर बाँधा। अब आदमी डोलवाले सिरे को झुकाता तो डोल पानी में डूब जाता और फिर उस पर हाथ का दबाव काम करता तो पत्थर का वजन पानी भरे डोल को ऊपर उठा लेता। डोल का पानी तट पर बने उथले गढ़े में डाला जाता, जो नालियों से खेतों तक पहुँचता।

आज भी गाँवों में जहाँ सिंचाई के दूसरे साधन नहीं हैं, इसी तरीके से किसान खेतों को सींचते हैं। इसे ढेंकुली कहा जाता है।

फसल पकती। आदमी उससे अनाज की बालियाँ इकट्ठा करता। फिर उनके ढेर को लकड़ियों से पीटता। पाँवों से रौंदता। इससे बालियाँ कुचली जातीं और दाने उनसे अलग हो जाते। फिर तेज हवा में उन्हें ऊपर उछाला जाता। ऐसा करने पर भूसा दूर उड़ जाता और दाने एक ओर निखर आते।

काफी दिनों तक आदमी अनाज को दो पत्थरों से पीसता रहा, जैसे सिल पर बट्टे से मसाला पीसा जाता है। पर बाद में उसने दो भारी पत्थरों को गोलाई में तराशा।

आदमी ने उस मुड़े हुए भाग को मिट्टी में घुसाकर दबा लिया और दूसरा आदमी लकड़ी के दूसरे सिरे को पकड़कर आगे खींचने लगा। इस क्रिया में जैसे-जैसे लकड़ी आगे बढ़ी, उसका मुड़ा हुआ भाग मिट्टी खोदता चला गया।

यही पहले-पहल हल से जमीन जोतने की क्रिया थी!

जमीन जुती। उसमें दाने डाले गए। धूप, हवा, पानी ने आदमी की मेहनत का साथ दिया और धरती पर अनाज की फसल लहलहाने लगी। नदियों के किनारे झोंपड़े बढ़ते गए। झोंपड़े गाँवों में बदले और गाँव शहरों में।

यही कारण है कि संसार के सभी प्राचीन नगर नदियों के किनारे बसे हुए हैं।

हल बनाकर आदमी हाथों से मिट्टी खोदने की मुश्किल से तो बच गया, पर अब उसे हल खींचना पड़ता। यह काम भी कम कठिन नहीं था। और इस कठिनाई से बचने का रास्ता भी उसे मिल गया। उसने पशुओं को हल में जोतना शुरू कर दिया। हमारे देश में आज भी हल को बैलों से खींचा जाता है।

लकड़ी के हल में आदमी ने तब कुछ सुधार भी किए थे। लकड़ी के मुड़े हुए भाग पर पहले उसने पत्थर का नुकीला टुकड़ा बाँधा। इससे जुताई और अच्छी तरह होने लगी। बाद में लौह-युग आने पर उसने पत्थर की फाल की जगह लोहे का टुकड़ा बाँध दिया। इससे जुताई और आसान हो गई।

एक पत्थर को जमीन पर रखकर उसके बीच एक कीला गाड़ दी और दूसरे के बीच सूराख कर उसे कीली में फँसा दिया। इससे उसे एक साथ ज्यादा और आसानी से अनाज पीसने का एक यंत्र मिल गया। गाँवों में आज भी ऐसी चक्कियाँ देखी जा सकती हैं।

तटों पर बसने के साथ-साथ कुछ जत्थे झीलों में भी बस गए। ऊँचे-ऊँचे बाँस पानी में गाड़कर उन्होंने उन पर झोंपड़े बना लिए। इससे उन्हें पानी की सुविधा हो गई और जानवरों का भी डर नहीं रहा। पर असल में यह उन स्थानों पर हुआ जहाँ झीलें बहुत थीं।

ऐसे इलाकों में आदमी खेती नहीं कर सकता था। इसलिए पेट भरने के लिए उसने झीलों की मछलियों का इस्तेमाल किया। शुरू में झील में उतरना बड़ा कठिन काम था। न जाने कितने लोग जल में डूबे होंगे। एक आदमी ने पेड़ के एक तने को पानी में तैरते देखा। अब उसे एक नई बात सूझी। पानी में घुसकर वह उसी तने पर सवार हो गया। जैसे घोड़े पर सवार हुआ जाता था, वैसे। आगे बढ़ने के लिए उसने हाथों से काम लिया। मनचाही दिशा में बढ़ने के लिए वह हाथों से पानी को पीछे ठेलता और तैरता जाता। पर ऐसा करते समय आदमी सुरक्षित नहीं रह पाता था। तना इधर-उधर घूमता, पलटता और आदमी गड़ाम से पानी में गिर पड़ता। जल गहरा होता तो डूब भी जाता।

पर एक बार उसने एक अद्‌भुत दृश्य देखा। उसने देखा कि एक ऐसा तना पानी पर तैर रहा है, जिसमें ऊपर की ओर एक गहरी खोखल है और उस खोखल में एक

गिलहरी बैठी मजे से कुछ खा रही है ! यह देखते ही उसे विचार आया कि तने के ऊपर सवार होने की बजाय अगर उसे खोखला करके उसके भीतर बैठा जाए तो बड़ा अच्छा हो ! फिर तो वह भी इस गिलहरी की तरह मजे में रहेगा।

आदमी ने अब ऐसा ही किया। वृक्ष के भारी-भरकम तने को कुलहाड़ी से खोखला कर उसने पानी में डाल दिया और उसमें जा बैठा ! इसी समय उसे एक और सूझ आई। तने को आगे बढ़ाने के लिए एक लंबा बाँस ले लिया और उसे झील की पेंदी में टिकाकर आगे बढ़ने लगा। इस प्रकार डूबने का डर भी कम हो गया और बाँस ने मेहनत भी कम कर दी। हाथों से पानी ठेलने की जरूरत उसे अब नहीं रही।

कुछ दिन और बीते, तो उसने लकड़ी के लंबे-चपटे तख्तों को आपस में जोड़कर पानी में डाला। फिर उनके एक सिरे पर एक और तख्ता लगाया और उस पर खाल का एक बादबान (पाल या पर्दा) टाँग दिया। इससे हवा उन तख्तों को आगे धकेलने लगी। यह आदमी की बनाई हुई पहली-पहली नाव थी। हजारों वर्ष तक बादबानी नावों का चलन रहा। बाद में जहाजों पर भी सदियों तक बादबान या पाल लगाए जाते रहे। आजकल भाप से चलनेवाले जो जहाज संसार के सभी सागरों पर तैरते फिरते हैं, इनका पिता लकड़ी का वही तना था, जिस पर आदमी पहले-पहल इधर-उधर टाँगें लटकाकर बैठता था।

नाव बनने के बाद आदमी तेजी से नदियों में यात्राएँ करने लगा। झीलों में तैरने लगा। उनमें बैठकर वह मछलियों का शिकार करता और छोटा-छोटा सामान भी इधर-से-उधर ले जाता।

आदमी ने जो झोंपड़े नदियों के किनारे बनाए थे, बाद में उसने उनकी दीवारें मिट्टी की बना ली थीं। पर ये दीवारें तेज आँधी-पानी में गिर जाती थीं और उसे फिर से उन्हें बनाना पड़ता था।

ईंटों के मकान

आज से करीब छः हजार साल पहले 'बाबुल-वासियों' ने घर बनाने का एक अनोखा उपाय निकाला। 'बाबुल' फरात नदी के किनारे बसा एक गाँव ही था, जो बाद में नगर बना। फरात नदी आज के इराक में है। बाबुल के लोगों ने किया यह कि मिट्टी में पानी मिलाकर उसे नरम बनाया। इस मिट्टी को लकड़ी के एक चौकोर साँचे में भर दिया। फिर साँचे में ढली उस मिट्टी को बाहर निकालकर धूप में सुखाया। सूखने के बाद मिट्टी के यही टुकड़े, जो बाद में ईंट के नाम से जाने गए, घर बनाने में इस्तेमाल किए जाने लगे। परतु यह भी कुछ ही साल काम देते। वर्षा में यह भी टूट-फूट जाते। अब क्या हो? मगर समय ने आदमी के भाग्य से इस सवाल को भी हल कर दिया।

एक बार किसी बच्चे ने एक ईंट आग में फेंक दी। बाद में आग बुझ जाने पर जब उस ईंट को देखा गया तो वह लाल रंग की और बेहद सख्त हो गई थी! ईंट को पकाने का एक अच्छा तरीका अनायास ही मिल गया।

अब ईंटों को आग में पकाया जाने लगा। पकी ईंटों से अब जो मकान बने, तो वे बड़े मजबूत और खूबसूरत साबित हुए।

कुछ ही दिनों में बाबुल-वासियों से ईंट बनाने और उसे पकाने की कला नील नदी के तट पर रहनेवाले लोगों ने भी सीख ली।

कुछ दिन पहले जो आदमी जंगलों में जानवरों-जैसा जीवन बिताता था, वह गुफाओं में आ बसा। गुफाओं से निकला तो झोंपड़ों में आया और अब झोंपड़ों से निकलकर पक्के घरों में रहने लगा। वही आदमी जो शुरू में सभी जीवों से कमजोर और परेशान था, अब संसार का राजा और सुखी बनता जा रहा था। जानवर आज तक गुफाओं में पड़ा है, परतु आदमी कहाँ-से-कहाँ पहुँच गया! और उसकी इस प्रगति का कारण है उसका असंतोष। अपनी जिंदगी के विकास पर उसे आज तक संतोष नहीं हुआ—और अगर होता, तो वह भी आज तक गुफाओं में पड़ा रहता, नंगा फिरता, कच्चा मास खाता और ज्यों-का-त्यों जानवर की तरह ही जंगली बना रहता।

लेकिन यह नहीं हुआ और आदमी का काफ़िला प्रगति के मार्ग पर हर रोज बढ़ता गया। वह एक मंजिल पर पहुँचता तो उसे अगली मंजिल बुलावा भेज देती और वह फिर चल पड़ता। सच तो यह है कि चलनेवालों के लिए कोई मंजिल नहीं होती। उनका काम तो लगातार चलते रहना है—जब तक कि थककर गिर न पड़ें!

बर्तन-भाँडे

आजकल जब हम भोजन करने के लिए बैठते हैं, तो नाना प्रकार के बर्तनों का उपयोग करते हैं; जैसे गिलास, थाल, प्याले, प्लेटें, लोटा, पतीला, तसला, तवा इत्यादि। ये सब बर्तन एक दिन में नहीं बन गए। इनमें से हरेक बर्तन के बनने-बनाने में सैकड़ों बरस लगे हैं। हर बर्तन के पीछे एक कथा छिपी है और इनमें से कितनी ही कथाओं का जन्म गुफाओं में हुआ है।

हजारों वर्षों तक तो आदमी ने पत्थर के बर्तनों से ही काम चलाया और फिर हजारों वर्ष बाद मिट्टी के बर्तन बनाने शुरू किए। मिट्टी पत्थर से ज्यादा नरम थी और उसे किसी भी शक्ल में ढाला जा सकता था।

यह सोचते ही आदमी ने इस दिशा में काम करना शुरू कर दिया। मिट्टी में जल मिलाकर वह उसे गूँध लेता। फिर वह मिट्टी को एक हाथ से घुमाता और दूसरे हाथ से उसे कोई शक्ल देता। लेकिन ऐसा करने में केवल एक ही हाथ से काम करता था। इसलिए आदमी ने सोचा कि कोई उपाय ऐसा होना चाहिए कि मिट्टी का लोंदा घूमता भी रहे और दोनों हाथ उसे मनचाहा ढालने के लिए आजाद भी रहें!

अनाज पीसनेवाली चक्की उसके ध्यान में थी। अब उसने पत्थर का एक टुकड़ा गोल किया और उसके ठीक बीच में छोटा-सा छेद कर दिया, पर ऐसा कि वह आर-पार न हो। फिर उसने जमीन में एक कीली गाड़ी और उस पर छेद के सहारे पत्थर को रख दिया।

अब यह पत्थर जमीन से तनिक ऊपर कीली पर घूम सकता था और उसके बीच रख गीली मिट्टी का लोंदा भी घूम सकता था। आदमी ने ऐसा ही किया। गोल पत्थर के ऊपरी हिस्से पर बनाए गए एक और छोटे गड्ढे में लकड़ी का एक डंडा डालकर वह उसे जोर से घुमाता। मिट्टी भी उसके साथ घूमती और आदमी के दोनों हाथ उसे बर्तनों में ढालते।

हमारे देश में आज भी मनुष्य की इस प्राचीन कला को जाननेवाले कलाकार मौजूद हैं और वे हैं कुम्हार या कुंभकार। तब का पत्थर का वह गोल टुकड़ा आज 'चाक' के नाम से जाना जाता है और जिस डंडे से वे चाक को घुमाते हैं, उसे 'चकलेटी' कहते हैं, जो संभवतः चकलाठी का बिगड़ा रूप है।

आदमी ने कच्ची ईंट को आग में पकाकर पक्का करना जान लिया था। कच्चे बर्तनों को भी उसने आग में पकाकर पक्का बनाया।

कपड़ा-लत्ता

शुरू में लाखों वर्ष तक आदमी नंगा रहा। फिर जब उसे शरीर ढँकने की सुध आई तो उसने पेड़-पौधों की पत्तियों का सहारा लिया। इसके बाद उसने जानवरों की खालों को पहनना शुरू किया। इन खालों को दाँतों से चबा-चबाकर नरम बनाता और पहनता, ओढ़ता और बिछाता। पर खाल तो खाल ही होती है। उसमें लोच नहीं थी। उनसे उसे सुख और आराम नहीं मिल रहा

था। न मिल सकता था। शरीर के लिए तो किसी नरम वस्तु की आवश्यकता थी। भेड़ों के बालों को देखकर वह सोचता होगा कि उसके शरीर पर भी वैसे ही बाल होते—नरम, घने और गर्म। परंतु बालों को शरीर पर किस प्रकार लपेटा जा सकता था ?

कौन जाने मकड़ी के जाले को देखकर उसने सोचा हो कि बालों के धागे बनाना चाहिए। परंतु धागे कैसे बनें ?

आदमी बरसों इस समस्या पर सोचता रहा।

आखिर एक दिन उपाय भी उसे सूझा। लकड़ी का एक गोल टुकड़ा बनाकर उसने उसके बीच में एक लंबी लकड़ी ठोंक दी। फिर कुछ लंबे बालों को उसकी जड़ में लपेटा। फिर तेजी से घुमाया और हाथ में लटका लिया। नीचेवाले बाल लंबी लकड़ी के ऊपरी सिरे तक आकर उसके साथ-साथ घूम रहे थे। अब उसने कुछ और बालों को उनसे जोड़ दिया। वे उससे लिपटकर एक हो गए और एक लंबा धागा-सा भी बन गया।

यह यंत्र क्या था ? वह तकली-जैसा ही कुछ था। चरखे तो बहुत बाद में बने।

बालों को या भेड़ों की ऊन को तकली पर कातकर शुरू में जो धागे आदमी ने बनाए, वे रस्सियों की तरह मोटे थे। सफाई और बारीकी उनमें नहीं थी, फिर भी धागे तो वे थे ही। पर सिर्फ धागों से ही काम नहीं चल सकता था। उन्हें जोड़कर खाल की तरह पहनने लायक भी तो बनाना था।

इसके लिए उसने लकड़ी का चौकोर फ्रेम या चौखटा

बनाकर धागे को ऊपर से नीचे लपेटा। उसके बाद पत्थर की बनी सुई से दूसरे धागे को बाएँ से दाएँ पहलेवाले धागे के ऊपर-नीचे लपेटा। इतना करने के बाद चौखटे को खोल दिया। अब चौखटे की लंबाई-चौड़ाई जितना कपड़ा बनकर तैयार था। इस कपड़े को आदमी ने शरीर पर भी लपेटा। ओढ़ा और बिछाया भी।

आदमी की विकास-यात्रा में यह एक और बड़ी सफलता थी। आदमी ने कपड़ा तैयार करना सीख लिया। आज भी कपड़ा चाहे जितनी बड़ी-बड़ी मशिनों से बुना जा रहा हो, उसके ताने-बाने का ढंग यही है!

जीवन की गति

आदमी ने खाने, रहने और पहनने का प्रबंध कर लिया। वह सभ्य होता जा रहा था। गुफाओंवाले जीवन से काफी आगे निकल आया था। फिर भी बहुत-सी जरूरतें, बहुत-सी कमियाँ उसे अपने जीवन में महसूस हो रही थीं। शिकार के लिए उसे मीलों पैदल भटकना पड़ता था। इसमें उसे समय भी बहुत लगता था और वह थक भी जाता था। इसलिए अब वह इस स्थिति से उबरने का उपाय भी सोचने लगा। सोचना इस मामले में भी रंग लाया। उसे एक ऐसे चौपाये का ध्यान आया, जिसे वह सदियों से देखता आ रहा था।

वह तेज, दौड़ाक, चालाक और सीधा जानवर था। एकदम अहिंसक और शाकाहारी। पूरी तरह गैरखतरनाक। आदमी ने शिकार कर उसका मांस भी

चखा था, पर उसे स्वाद नहीं आया। आखिर आदमी ने सोचा कि क्यों न इसे सवारी के लिए काम में लाया जाए।

और आदमी ने यही किया। उसे पकड़ा, पालतू बनाया और उसकी पीठ पर सवारी गाँठकर उसी की गति से दौड़ने लगा। नदी, नाले, जंगल, रेगिस्तानों और छोटे-बड़े पहाड़ों तक को वह उसकी पीठ पर बैठ लाँघने-फलाँगने लगा। कठिन-से-कठिन शिकार करने लगा।

यह जानवर और कोई नहीं, आज का अपना घोड़ा ही था। घोड़ा यानी अश्व या तुरंग, या अंग्रेजी का हॉर्स (horse)!

शुरू में आदमी को कुछ कम परेशान नहीं किया इस घोड़े ने। पहली बार जैसे ही वह उसकी पीठ पर बैठा कि वह भड़क उठा और उसको नीचे गिराकर भाग गया। पर आदमी ठहरा अक्ल का पुतला। उसने उसे दुबारा पकड़ा और उसके मुँह में एक मजबूत रस्सी डाल दी और रस्सी के दोनों सिरे थामकर फिर सवार हो गया। अब घोड़ा उसके काबू में था और बेचारा आज तक बेकाबू नहीं हो सका!

'पहिये' का निर्माण

मिस्र में 'अहराम' (पिरामिड) बनाने के लिए बड़े-बड़े पत्थरों का इस्तेमाल हुआ है। जब ये बने तब क्रेन तो थी नहीं, तब उन विशाल पत्थरों को हजारों दास रस्सों में बाँधकर घसीटते थे। छोटे पत्थरों या पेड़ों के तनों की तरह इन चट्टानों को लुढ़काना भी संभव नहीं था। पर

घसीटना भी आसान न था। इसलिए मिस्रवासियों को एक नई तरकीब सूझी। उन्होंने चट्टाननुमा उन पत्थरों के नीचे लकड़ी के गोल टुकड़े रखे। इससे पत्थरों को घसीटना आसान हो गया। लकड़ी के टुकड़े घूमते और पत्थर आगे खिसकते।

बाद में लकड़ी के इन्हीं गोल टुकड़ों को आदमी ने पहियों की शक्ल दे डाली!

पहिये का निर्माण कोई मामूली निर्माण नहीं था। रफ्तार की दुनिया में इससे आदमी को मानो पंख ही मिल गए। पहिये ने आदमी का बोझ कम कर दिया। इसी पहिये के बूते पर पहले उसने भैंसा-गाड़ी और बैल-गाड़ी बनाई और फिर हजारों बरस बाद बनाई रेलगाड़ी, मोटर और हवाई जहाज!··· और ऐसा कितना-कुछ जिसमें पहियों का इस्तेमाल होता है। पहियों का ही यह कमाल है कि एक रेल-इंजिन सैकड़ों भारी डिब्बों को खींचकर ले जाता है। आज संसार की हरेक गाड़ी में पहिये होते हैं—सिर्फ 'स्लेज' को छोड़कर, क्योंकि यह बर्फ पर फिसलनेवाली गाड़ी है और बर्फ पर फिसलने के लिए पहियों की आवश्यकता नहीं होती।

भाषा की पहचान

पशु-पक्षी आदमी की तरह बात नहीं करते, सिर्फ कुछ आवाजें निकालते हैं। कुत्ता भौंकता है। मुर्गी खुट-खुट करती है। बिल्ली म्याऊँ-म्याऊँ करती है। कोयल कुहुकती है तो कौआ काँव-काँव करता है। यदि ध्यान से सुनें और देखें तो पता चलेगा कि खुशी, **नाराजगी**, दुख

और सुख की दशा में ये आवाजें अलग-अलग होती हैं—इसलिए कि वह कोई भाषा नहीं जानते और अपनी भावनाओं के उतार-चढ़ाव को अपनी आवाज में उतार-चढ़ाव से ही जता सकते हैं।

और शुरू में, आदमी की भी यही स्थिति थी। उसके पास कोई भाषा नहीं थी, सिर्फ कुछ आवाजें थीं। फिर आज की इतनी सारी भाषाओं और उनकी सुंदर-सुंदर लिखावट का जन्म कैसे हुआ ? गुफाओं का वह हूँ-हा, ऐं-आँ, ई-ऊ जैसी ध्वनियाँ निकालनेवाला मनुष्य आज का भाषा-विज्ञानी कैसे बन बैठा ?

इन सवालों का जवाब जानने के लिए हमें फिर उन्हीं गुफाओंवाले इतिहास में झाँकना होगा।

गुफाओंवाला आदमी—यानी हमारा ही पूर्वज—एक दिन एक जानवर मारकर लाया। शिकार मिलने की खुशी में नाचता हुआ और मुँह से एक आवाज-सी निकालता हुआ, हँसता हुआ। उसके बालकों ने उसकी आवाज को सुना। वे भी खुश हुए, नाचे और पिता-जैसी आवाज उनके गले से भी निकली ! अगले दिन पिता फिर जंगल से लौटा। पर आज उसके पास कोई जानवर नहीं था। आज उसने जानवर को नहीं, जानवर ने उसे घायल कर दिया था। इससे वह दुखी था। उसका चेहरा उतरा हुआ था और मुँह से कुछ दूसरी तरह की आवाज निकाल रहा था।

बच्चों ने देखा तो वे भी उदास हो गए। और जब ऐसा कई बार हुआ तो बालकों ने समझा कि सुख और दुख की आवाजों में फर्क है। उन्होंने दोनों की पहचान

कर ली ।

एक दिन आदमी लाल रंग के कुछ फल लाया। सबने उन्हें खाया, पर जी नहीं भरा। आदमी थका हुआ था, इसलिए उसने फल की ओर इशारा करके एक आवाज निकाली। बालक दौड़े-दौड़े बाहर गए और वैसे ही बहुत-से फल तोड़ लाए। बहुत बार ऐसा हुआ। आखिर बच्चों को फल दिखाकर इशारा करने की भी जरूरत नहीं रही। बस, आदमी वैसी ही आवाज निकालता और बच्चे फल तोड़ लाते। धीरे-धीरे हरेक फल के लिए अलग-अलग आवाजें तय हो गईं। उन आवाजों को सभी ने जान-पहचान लिया और उनका मतलब निकालने लगा। हर आवाज हर चीज के लिए शब्दों की शक्ल में सुनाई पड़ने लगी। कहना चाहिए, शुरू में आवाज और इशारों से ही भाषा का जन्म हुआ। और आज भी बच्चा पहले आवाज और इशारों से ही चीजों को समझता है।

अब, जब आदमी ने भाषा को बोलना सीख लिया, तो लाखों बरस इसी से उसने अपना काम चलाया। हँसना-रोना, गाना-चिल्लाना, कहना-सुनना सब-कुछ चलता रहा और वह खुद भी चलता रहा। चलते-चलते उसे भाषा को लिखने की जरूरत महसूस हुई। परंतु लिखा कैसे जाता? कोई लिपि तो उसके पास थी नहीं!

पर एक दिन क्या हुआ? एक आदमी के पास अनगिनत भेड़ें थीं। सबको याद रखना कठिन हो उठा। सोच-विचार करते-करते उसे एक तरकीब सूझी। उसने अपनी लाठी पर उतने ही निशान खोद दिए जितनी

भेड़ें थीं ! पर समस्या यह भी थी कि काली और सफेद भेड़ों की संख्या को कैसे ध्यान में रखा जाए ? कुछ सोचकर काली भेड़ों के लिए उसने गहरे और सफेद भेड़ों के लिए हल्के निशान बनाए ! इससे याद रखने की समस्या हल हो गई । कोई भेड़ कम होती तो एक निशान मिटा देता । बढ़ती तो एक निशान बढ़ा देता ।

प्राचीन इतिहास में लिखा है कि अमरीका के 'रेड इंडियन' जब लंबी यात्रा पर निकलते थे तो एक दिन बीतने पर लकड़ी पर एक निशान बना देते थे । इस प्रकार उन्हें पता चलता रहता था कि यात्रा में कितने दिन हो गए हैं । इसी तरह आस्ट्रेलिया के आदिवासी जब कोई संदेश ले जाते तो जितने संदेश होते उतने ही निशान लकड़ी पर लगा देते थे । हमारे देश में भी कोई बात याद रखने के लिए कपड़े में गाँठ लगाने का रिवाज था । इसीलिए मुहावरा भी है—बात को गाँठ में बाँधना ।

परंतु केवल निशान बनाना या गाँठ बाँधना ही काफी नहीं था । यदि किसी के पास दस घोड़े, बीस भेड़ें, और पंद्रह भैसें होतीं तब उन्हें कैसे याद रखा जाता ? ऐसी हालत में एक-जैसे निशानों से काम नहीं चल रहा था ।

इसलिए आदमी ने फिर छलाँग लगाई । उसने दस घोड़ों के लिए दस घोड़ों की, बीस भेड़ों के लिए बीस भेड़ों की और पंद्रह भैसों के लिए पंद्रह भैंसों की तस्वीरें बना दीं ! ... और यहीं से जन्म हुआ चित्रोंवाली भाषा का !

चित्र-भाषा के प्रमाण प्राचीन गुफाओं में जगह-जगह पाए गए हैं । इस संबंध में एक रोचक घटना भी है । करीब डेढ़ सौ बरस पहले ही, 1820 ई. में अमरीकी

शिकारियों की एक टोली मिसीसिपी के जंगलों में गई। उनके साथ दो सेवक भी थे। रात को इस टोली ने तंबू में विश्राम किया। सवेरा हुआ तो एक आश्चर्यजनक चित्र उन्होंने देखा। पास ही एक वृक्ष के कटे हुए तने पर कोयल का एक भद्दा-सा चित्र बना हुआ था—तंबू और तंबू के पास बहुत-से आदमियों की आकृतियाँ, जिनके सिरों पर टोप थे और हाथों में बंदूकें! केवल दो आकृतियों के सिर नंगे थे। शिकारी समझ गए कि ये उन्हीं के चित्र हैं जो यहाँ के जंगली आदिवासियों ने बनाए हैं। इन चित्रों का अर्थ यही था कि अमरीकी शिकारियों ने यहाँ दो सेवकों के साथ रात बिताई!

आरंभ में बात समझाने का यही तरीका था। चित्रों की भाषा लिखी जाती थी। आदमी भूखा है, यह बताने के लिए उसका चित्र बनाते और खुले मुँह पर उसका हाथ उठा हुआ दिखाते। आदमी के चेहरे पर दाग बनाने का अर्थ होता चेचक फैल रही है। प्राचीन मिस्र और चीन में चित्र-भाषा का ही चलन था। धीरे-धीरे चित्रों का आकार घटने लगा। वे संकेत मात्र रह गए। आदमी के चित्र की बजाय दो टाँगें बनाने से ही आदमी समझ लिया जाता। धीरे-धीरे चित्रों का आकार शब्दों और अक्षरों का रूप ग्रहण करता गया। जैसे-जैसे शब्द बने वैसे-वैसे चित्रों का चलन घटता गया।

इस प्रकार आदमी को भाषा मिली, पर उन दिनों कागज़ उसके पास नहीं था। इसलिए शुरू में पत्थरों पर ही वह अपनी बात चित्रों, शब्दों के सहारे लिखता रहा, खोदता रहा। परंतु पत्थर बहुत भारी होते थे और उन्हें

इधर-उधर लाया-ले जाना कठिन था। इसलिए उसने वृक्षों की छालों और पशुओं की खालों पर लिखना शुरू किया। हजारों वर्ष बीत गए। बीतते चले गए। और आखिर आदमी ने कागज-जैसी चीज भी खोज ली।

कागज़ ! अँगरेज़ी में कागज का नाम है—'पेपर' (paper)। पर यह शब्द कहाँ से आया ? इसकी एक कहानी है। प्राचीन मिस्र में नील नदी के किनारे एक प्रकार के पौधे उगते थे ! उनका नाम था—papyrus—पेपिरस ! 'पेपर' शब्द की उत्पत्ति इसी से हुई।

पर यह नाम पड़ने से पहले भी कागज बनाया जा रहा था। दरअसल सबसे पहले कागज का निर्माण चीन में हुआ। चीनी लोग मछली के जालों, चीथड़ों आदि को पानी में गलाकर खूब कूटते, यहाँ तक कि उनकी लुग्दी बन जाती। फिर इस लुग्दी को वे किसी लकड़ी के चिकने तख्ते पर फैलाकर एक और तख्ते से दबाकर सुखाते। ऐसा करने पर जो कागज बनता, उसे किसी और चीज से घिस-घोटकर वे चिकना बना लेते। हजारों वर्ष तक चीनियों ने यह कला किसी को नहीं बताई, पर एक युद्ध में जब मिस्रियों ने बहुत-से चीनी सैनिक कैद कर लिए तो उन्हीं से मिस्रवासियों ने कागज बनाना सीख लिया और उसका नाम 'पेपर' पड़ा।

आजकल भी बड़े-बड़े कारखानों में कागज बनाया जा रहा है, यह बाँस, चिथड़ों और इस्पार्टो नामक घास (esparto grass) से बनाया जाता है।

भाषा और फिर कागज के निर्माण ने आदमी को

आदमी बना दिया। उसकी समझ और सभ्यता में चार चाँद लग गए। उसकी बुद्धि से आगे बढ़ती सभ्यता के महान कार्यों का लेखा-जोखा पुस्तकों में सुरक्षित रखा जाने लगा।

पुस्तकें इतिहास हैं। वेद, पुरान, बाइबल और न जाने कितने प्राचीन ग्रंथों में मानव के महान ज्ञान की संपदा बिखरी पड़ी है। आदमी के जीवन का कितना-कुछ बिखरा पड़ा है।

मनुष्य गुफाओं में रहा, नदियों के किनारे रहा, कबीलों में घूमता रहा, गाँव बसाए और अब नगरों में रह रहा है। सितारों तक छलाँगें लगा रहा है!

मनुष्य ने जानवरों को मार-मारकर खाया, फल-फूल, कंद-मूल पर निर्भर रहा, अनाज के दानों को भूनकर खाया और आज उसके पास खाने की चीजों की लिस्ट ही काफी वज़नी है!

मनुष्य नंगा रहा, पत्तों को पहना, जानवरों की खालों से तन ढँका, मोटा-मोटा कपड़ा बनाया, टाट-जैसे मोटे वस्त्र पहने और अब तो ढाके की मलमल भी उसने पीछे छोड़ दी है!

और दरअसल क्या-क्या पीछे नहीं छोड़ दिया उसने!

मानव-इतिहास के करोड़ों वर्ष!

अपना तमाम पिछड़ापन!

अपनी अशिक्षा, अपना अज्ञान!

अपनी हर तरह की गुलामी के कितने-कितने तरीके!

राजों-महाराजों की कहानियाँ ! हजारों खूँखार लड़ाइयाँ !

सामंतों, जमींदारों के जुल्म, आदमी बने रहकर भी जानवर बने रहने की यादें !

पर असली जानवरों का जीवन आज भी वैसा ही है। वैसा ही, जैसा हजारों वर्ष पहले था। वे आज तक सभ्य नहीं हुए और न कल होंगे। वे आज भी जंगलों में हैं—एक-दूसरे को मारकर खा रहे हैं, और आदमी गुफाओं से निकलकर सभ्यता के लंबे रास्ते पार कर आया है और बढ़ता ही जा रहा है—चाँद और सितारों की ओर ! धरती के ऊपर उन मार्गों पर जिन पर सितारों के दीप जल रहे हैं !

और सितारों की नगरी का यह मुसाफिर वही गुफाओंवाला आदमी है, जो नंगा फिरता था, कच्चा मांस खाता था और जानवरों से भयभीत रहता था। परंतु सितारे ही उसकी अंतिम मंजिल नहीं हैं। उसे उनसे भी आगे जाना है, बहुत दूर—न जाने कहाँ !…

Acc. No. 78944
Date 22-3-93

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

Library IIAS, Shimla
H 028.5 Ab 84 G
00078444